





समाज विकासमाला

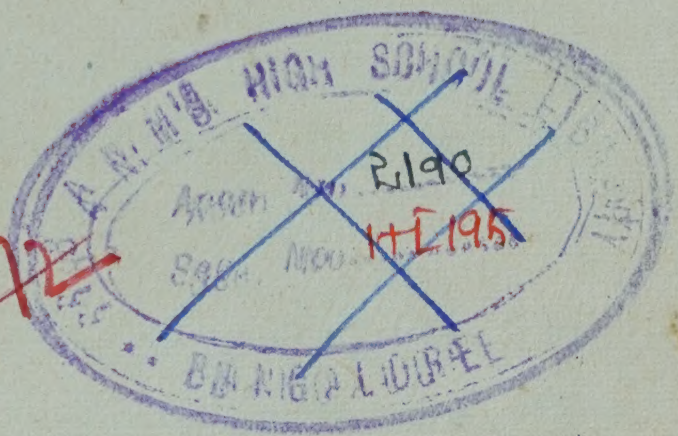
हम सुखी कैसे रहें?

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

समाज-विकास-माला : ३८

हम सुखी कैसे रहें ?

भारतीय संस्कृति का परिचय



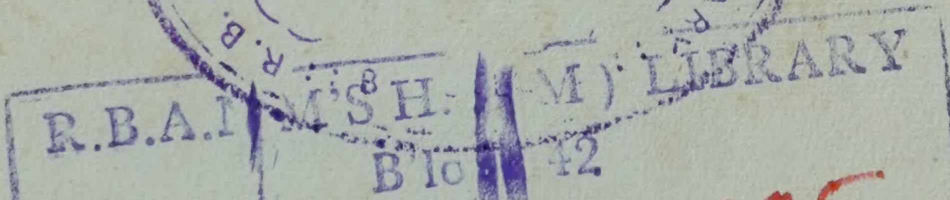
लेखक

संतराम 'विचित्र'

सम्पादक

यशपाल जैन





१९५७

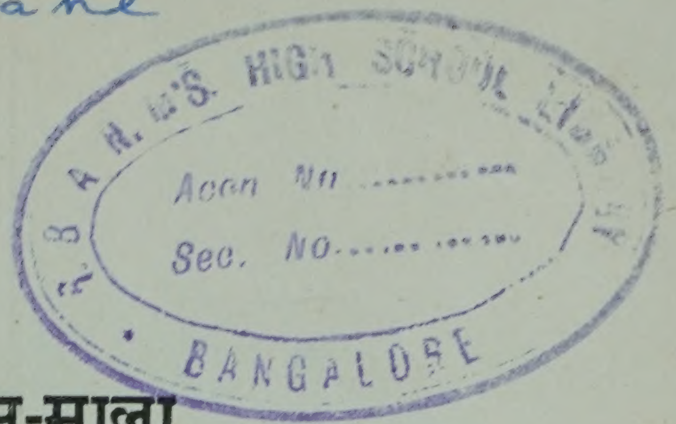
सस्ता साहित्य मंडल-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

दूसरी बार : १९५७
मूल्य
छः आना

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स,
दिल्ली

Ham Suki Kise rahe



समाज-विकास-माला

हमारे देश के सामने आज सबसे बड़ी समस्या करोड़ों आदमियों की शिक्षा की है। इस दिशा में सरकार की ओर से यदि कुछ कोशिश हो रही है तो वही काफी नहीं है। यह बड़ा काम सबकी सहायता के बिना पार नहीं पड़ सकेगा।

बालकों तथा प्रौढ़ों की पढ़ाई की तरफ जबसे ध्यान गया है, ऐसी किताबों की मांग बढ़ गई है, जो बहुत ही आसान हों, जिनके विषय रोचक हों, जिनकी भाषा मुहावरेदार और बोलचाल की हो और जो मोटे टाइप में बढ़िया छपी हों।

यह पुस्तक-माला इन्हीं बातों को सामने रख कर निकाली गई है। इसमें कई पुस्तकें निकल चुकी हैं। इन सबकी भाषा बड़ी आसान है। विषयों का चुनाव बड़ी सावधानी से किया गया है। छपाई-सफाई के बारे में भी विशेष ध्यान रक्खा गया है। हर किताब में चित्र भी देने की कोशिश की है।

यदि पुस्तकों की भाषा, शैली, विषय, और छपाई में उन्हें सुधार की गुंजाइश मालूम हो तो उसकी सूचना निस्संकोच देने की कृपा करें।

दूसरा संस्करण

बड़े हर्ष की बात है कि इस पुस्तक का दूसरा संस्करण इतनी जल्दी प्रकाशित हो रहा ह। इस माला की सभी पुस्तकें पाठकों को पसंद आ रही हैं, इससे हमें बड़ा आनंद होता है। हमें विश्वास है कि इन सामयिक और उपयोगी पुस्तकों को पाठक चाव से पढ़ेंगे और इनके प्रचार में हाथ बटाएंगे।

—मंत्री

पाठकों से

हर आदमी शरीर, मन और आत्मा से तंदुरुस्त रहना चाहता है। इसलिए कि उसकी इच्छा सुख और शांति से रहने की होती है। पर आज की दुनिया में ऐसा हो नहीं रहा है। आदमी किसी-न-किसी रूप में दुखी है और अशांत है। इसका कारण यह है कि आदमी ने असली तत्त्व को छोड़ दिया है, छाया के पीछे भाग रहा है।

हमारी संस्कृति ने, जो बहुत पुरानी है, हमें सुख और शांति का रास्ता बताया है। वह कहती है कि अपने शरीर, मन और आत्मा का विकास करो, दूसरों से प्रेम करो, दूसरों की सेवा में अपनी शक्ति लगाओ और जहां तक हो सके, इस धरती के बोझ को हल्का करो। जो ऐसा करते हैं, वही इन्सान हैं।

इस किताब में आपको ऐसी बहुत-सी बढ़िया बातें पढ़ने को मिलेंगी। आपको यह भी मालूम होगा कि आखिर हमारे देश में ऐसी क्या बात है, जो यहां की भूमि पर महावीर, बुद्ध और गांधीजी जैसे महापुरुष पैदा हुए, और आज क्यों सारी दुनिया उसकी ओर आशाभरी निगाह से देख रही है।

—संपादक

हम सुखी कैसे रहें ?

: १ :

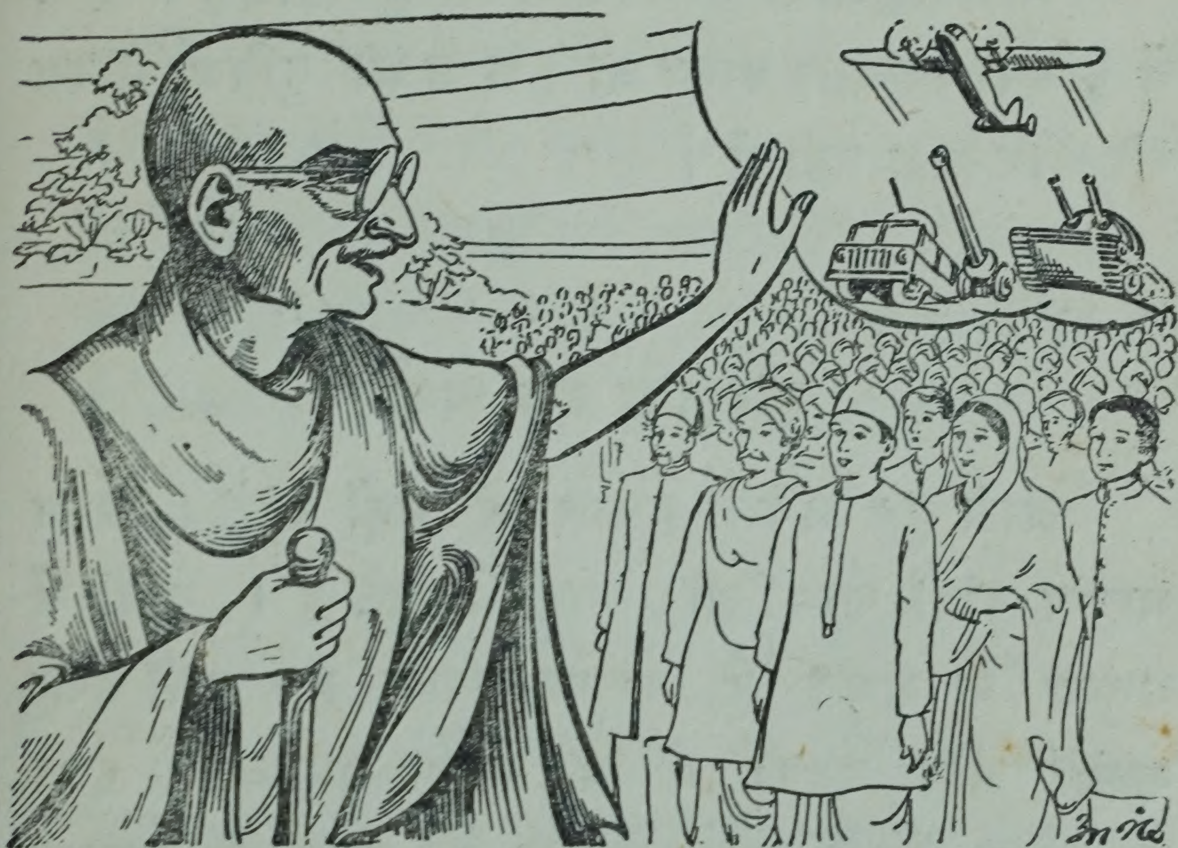
आज की तड़क-भड़क

आकाश में हवाई जहाज उड़ते हैं। सड़कों पर मोटरें और लारियाँ दौड़ती हैं। भक्-भक् करती रेलें भागी जाती हैं। खेतों में हल की जगह ट्रैक्टर दिनों का काम घंटों में करते दिखाई देते हैं। हम सुनते हैं, हवाई जहाज़ों से लड़ाइयां होती हैं। हवाई जहाज़ बम बरसाते हैं। मशीनगनों से मिनटों में सैकड़ों गोलियां चलती हैं। तोपों से बड़े-बड़े बम के गोले मीलों तक मार करते हैं। यह सब देख-सुन कर आदमी की बुद्धि पर आश्चर्य होता है।

हम, आप सब सोचते हैं कि मनुष्य ने कितनी तरक्की कर ली है! आदमी कितना आगे बढ़ गया है! कितना सभ्य बन गया है! कितना समझदार बन गया है! उसने अपनी समझदारी से कितनी बड़ी-बड़ी कलें और कारखाने लगा लिये हैं! बेचारा,जुलाहा दिन भर में पांच-सात गज़ ही कपड़ा बुन पाता था, अब कलें मिनटों में दिनभर का काम कर देती हैं।

ऐसी-ऐसी अचरजभरी बातों को देख और सोच कर हमारा ध्यान अपने देश की ओर जाता है। हमें ख़याल हो आता है कि हमारा देश कितनी पिछड़ी हालत में है ! हम सोचते हैं कि हमारी सभ्यता और संस्कृति ने हमें दुनिया के दूसरे देशों की तरह उन्नति नहीं करने दी। आज की तड़क-भड़क और चकाचौंध को देखकर ऐसा ख़याल हो जाता है। लेकिन ऐसा सोचने से पहले हम अपनी संस्कृति को भूल जाते हैं। हम भूल जाते हैं कि हमारी संस्कृति और सभ्यता तड़क-भड़क और चकाचौंध पैदा करने वाली नहीं है। हम यह भी भूल जाते हैं कि मनुष्य जब आगे बढ़ता है और उसकी बुद्धि और मन का विकास होता है, तो उसके हाथों कुछ बनता है, न कि बिगड़ता है। आज के बम बरसानेवाले हवाई जहाज़ और तोपें इस बात की निशानी हैं कि आदमी ने जो उन्नति की है, उससे वह दुनिया में प्रेम और शांति, कल्याण और संतोष नहीं पैदा कर रहा, बल्कि दुश्मनी, हिंसा और असंतोष की आग भड़का रहा है। संस्कृति और सभ्यता से वह भटक गया है। संस्कृति और सभ्यता से तो प्रेम और शांति का राज्य स्थापित होना चाहिए।

बहुत पुराने ज़माने की बात नहीं है। कुछ ही साल पहले इस धरती पर गांधीजी पैदा हुए थे। उन्होंने प्रेम, सत्य और अहिंसा का रास्ता दिखाया। कोई ह दुनिया में जो बापू को यह कह सके कि वह संस्कृति और सभ्यता को नहीं जानते थे? संस्कृति और सभ्यता की वह मूर्ति थे। उन्होंने जीवन भर यही कहा कि चकाचौंध से दूर रहो, दिनों का काम मिनटों और घंटों में करनेवाली बड़ी-बड़ी कलों से बचो। इनसे



बड़ी-बड़ी मशीनें, हवाई जहाज, तोपें सभ्यता की निशानी नहीं है।

मनुष्य में दुश्मनी, हिंसा और असत्य की भावनाएं पैदा होती हैं। ये बड़ी-बड़ी कलें और मशीनें, कार-

ख़ाने, हवाई जहाज़, तोपें, मशीनगनें, टैंक संस्कृति और सभ्यता की निशानी नहीं हैं। ये तो संस्कृति और सभ्यता को नाश करने के साधन हैं। गांधीजी ने संस्कृति को अपने जीवन में ढालकर दिखा दिया कि अगर दुनिया को शांति और मनुष्यों के कल्याण की चाह है तो उसे भारतीय संस्कृति को अपनाना पड़ेगा।

आज से हज़ारों साल पहले भी हमारी इस संस्कृति ने दुनिया पर असर डाला था। आज भी दुनिया भारत की ओर ताक रही है।

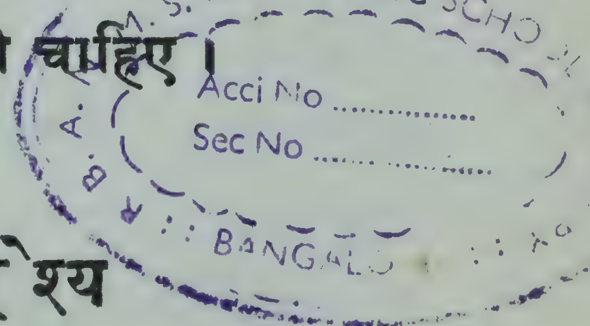
: २ :

संस्कृति का अर्थ

आज हम जंगली हालत में नहीं रहते। आज मनुष्य गांवों, कस्बों और नगरों में रहते हैं। गांवों में मनुष्य के समूह हैं, मनुष्य-समाज है। इसी तरह कस्बों और नगरों में भी मनुष्य-समाज है। इसी तरह सारे देश में मनुष्य-समाज है। इससे भी बढ़कर दुनिया भर में मनुष्य-समाज है। जब हम 'भारतीय संस्कृति' का नाम लेते हैं तो उससे हमें भारत के मनुष्य-समाज की उस हालत का पता चलता है, जिसके

सहारे वह सुधरा हुआ बनता है या उन्नति करता है अथवा सभ्य बनता है।

देश-विदेश के आचार-विचार अलग-अलग होते हैं, इसलिए सुधार के बारे भी अलग-अलग विचार होते हैं। यही कारण है कि हर देश की 'संस्कृति' भी अलग-अलग होती है। लेकिन 'संस्कृति' के विचार अलग अलग होते हुए भी बुनियादी बातें तो एक-सी हैं। सब देशों की संस्कृतियों का उद्देश्य मनुष्य-समाज की उन्नति करना है। मनुष्य-समाज की उन्नति ही संस्कृति की बुनियाद है। यह बात बिल्कुल साफ़ है और कोई भी इससे इन्कार नहीं कर सकता। इस 'संस्कृति' में जो अदला-बदली होती है, वह तो केवल देश और काल के अनुसार है और ऐसा होना भी चाहिए।



: ३ :

संस्कृति का उद्देश्य

जैसा कि ऊपर कहा गया है, संस्कृति का उद्देश्य 'मनुष्य' और 'मनुष्य-समाज' की उन्नति करना है। 'मनुष्य-समाज' से पहले मनुष्य का स्थान है। अगर मनुष्य का सुधार हो जाय, या मनुष्य उन्नति कर ले, तो 'मनुष्य-समाज' की सहज उन्नति हो जायगी, क्योंकि

मनुष्यों के मेल का ही नाम तो समाज है ।

अब सवाल यह उठता है कि मनुष्य की उन्नति कैसे हो ? यह किस प्रकार अपना सुधार करे ? आप जानते हैं कि मनुष्य का एक तो शरीर है, दूसरा मन है और तीसरी आत्मा है । परमात्मा ने शरीर, मन और आत्मा के मेल से मनुष्य की रचना की है । जब मनुष्य जन्म लेता है और उसके बाद ज्यों-ज्यों उम्र में बड़ा होने लगता है, उसे शरीर, मन और आत्मा की शक्ति को बढ़ाने की आवश्यकता महसूस होती है। 'संस्कृति' ही मनुष्य की शारीरिक मानसिक और आत्मिक उन्नति का साधन है । मतलब यह कि संस्कृति के सहारे मनुष्य अपनी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति करता है। मनुष्य की इन तीनों शक्तियों को संस्कृति जितना अधिक बढ़ाती है, वह उतनी ही ऊंची मानी जाती है।

जो संस्कृति इन तीनों को एक साथ बढ़ावा नहीं देती वह अधूरी होती है। मान लीजिए कि एक देश की संस्कृति है जो केवल शारीरिक उन्नति पर ही ध्यान देती है। वह वहां के लोगों को शूरवीर या लड़ाकू बना देती है; लेकिन शूरवीर या लड़ाके मनुष्यों से ही तो मनुष्य-समाज का भला नहीं होगा ।

ऐसे सूरवीरों के समाज में प्रेम, सत्य और अहिंसा का राज नहीं होगा, बल्कि वहां द्वेष, असत्य और हिंसा का राज होगा।

यही हालत मानसिक उन्नति करनेवालों की है। दुनियां के बहुत से देशों की बातें देख-देख कर अचरज होने लगता है। इस इकतरफा उन्नति के कारण ये देश कितने मतलबी बन गये हैं ! इन देशों ने भले ही बड़े-बड़े कल कारखाने खड़े कर लिये हैं, भले ही ऐसे-ऐसे बम बना लिये हैं, जिनसे पल भर में प्रलय हो जाती है. लेकिन क्या इसे उन्नति या मनुष्य का विकास कह सकते हैं ? कभी नहीं। इस प्रकार की उन्नति और विकास का नतीजा नाश है और नाश करने या चाहनेवाला देश और समाज मतलबी होता है। उसके नागरिक, उस समाज के मनुष्य सब--अपना अपना स्वार्थ देखते हैं। उन्हें अपने सिवा दूसरे के सुख-दुःख का ध्यान नहीं होता। यही बातें आज दुनियां के बहुत से देशों के लोगों में पाई जाती हैं। इसीलिए हर देश दूसरे देश का नाश कर डालना चाहता है या उसे अपने अधीन कर लेना चाहता है।

किंतु जब हम अपने देश की ओर ध्यान देते हैं तो हमें जान पड़ता है कि हमारी संस्कृति इन सब बातों

से ऊपर है। वह मनुष्य की सच्चे मानों में उन्नति करती है। उसका उद्देश्य मनुष्य की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति को बढ़ावा देना है और यही एक संस्कृति है, जिसकी बुनियाद पर शांति और सच्चे सुख की इमारत खड़ी की जा सकती है।

: ४ :

हमारी संस्कृति

ऊपर मनुष्य की तीन शक्तियों का जिक्र आया है—शारीरिक, मानसिक व आत्मिक। हमारी संस्कृति इन तीनों शक्तियों का विकास करती है। मनुष्य की इन तीनों शक्तियों का कैसे विकास हो सकता है, इस बारे में हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने अनेक अनुभव किये। उन्होंने अपने अनुभवों को प्राचीन ग्रंथों, वेदों, शास्त्रों, दर्शनों, उपनिषदों, स्मृतियों आदि में प्रकट किया। इन ग्रंथों के सहारे उन्होंने मनुष्य का मानसिक विकास किया और मनुष्य को मानसिक उन्नति करने का मार्ग दिखाया। किंतु शारीरिक उन्नति के बिना तो मानसिक उन्नति हो नहीं सकती, क्योंकि जिसका शरीर कमजोर है. वह मानसिक विकास क्या कर सकेगा ? ऐसी हालत में शारीरिक उन्नति को सबसे पहला स्थान दिया गया।

: ५ :

शारीरिक उन्नति या ब्रह्मचर्याश्रम

बालक जन्म लेता है। माता-पिता उसका पालन करते हैं। धीरे-धीरे बालक चलने-फिरने लगता है। बोलने लगता है। बातचीत करने लगता है। उसमें हर बात को जानने की इच्छा पैदा हो जाती है। वह पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, आस-पास की सब वस्तुएं जान लेना चाहता है। उसकी इंद्रियां ज्ञान चाहती हैं। वह समय बालक को ज्ञान प्राप्ति का है। यही देखकर हमारे ऋषि-मुनियों नें आज्ञा दी कि पांच वर्ष के बाद बालक को गुरुकुल में शिक्षा के लिए भेज दिया जाय।

पुराने समय में बालक गुरुकुलों या ऋषि-मुनियों के आश्रमों में विद्या पढ़ने जाते थे। आज भी दुनिया भर के देशों में बालक को चार-पांच वर्ष की उम्र में स्कूल भेज दिया जाता है। आज के जमाने की पढ़ाई का सिलसिला पंद्रह-सोलह बरस में जाकर खत्म होता है। अगर एक बालक को छठे बरस में पहली जमात में दाखिल कराया जाय तो ऊंची परीक्षा पास करने तक उसे कोई १४ बरस पढ़ना होगा। इसके मानी यह हैं कि २०-२१ बरस की उम्र में वह ऊंची

परीक्षा पास कर लेता है ।

अब देखिए, तनिक अपने देश की संस्कृति, प्राचीन



बालक आश्रमों में शिक्षा प्राप्त करते थे ।

ऋषियों ने मनुष्य की पूरी आयु सौ बरस की आंकी थी। सौ बरस तक जीवित रहने की आदमी सदा कामना करता आया है। वेदों के मंत्रों में परमात्मा से प्रार्थना की जाती है, "प्रभो, हम सौ वर्ष तक जिएं।" इन सौ बरसों को ऋषियों ने चार हिस्सों में बांटा। वे चार हिस्से हैं--ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। इन चार हिस्सों को आश्रम कहते हैं।

ब्रह्मचर्य-आश्रम का उद्देश्य है, विद्या प्राप्त करना, अपने पर संयम रखना, अपनी इंद्रियों को वश में रखते हुए शरीर को बलवान् बनाना और अंग-अंग को मज़बूत करना। इसके लिए २५ बरस का समय रखा गया। इस समय में ब्रह्मचारी अपने शारीरिक विकास के साथ-साथ विद्याभ्यास करते थे। विद्याभ्यास से उनका मानसिक विकास होता था।

शारीरिक विकास के लिए व्यायाम किया जाता था, जो यम-नियमों की सहायता से चलता है। यम-नियमों से इंद्रियों को काबू में किया जाता है। प्राणायाम भी व्यायाम है। इससे मन की चंचलता को वश में किया जाता है। फेफड़ों को शक्ति मिलती है। फेंफड़ों से शुद्ध-साफ खून देह में दौड़ता है, जिससे शरीर मजबूत बनता है और मानसिक विकास करने में सहायता देता है। यही मानसिक विकास मनुष्य की बुद्धि को तीव्र बनाता हे। इससे आदमी समझदार और अक़्लमन्द कहलाना है। वास्तव में बुद्धिमान् वही है, जिससे आत्म को, यानी अपने-आपको पहचान लिया है। जिसने आत्मा को पहचान लिया, उसका आत्म-विकास हो गया।

इस प्रकार भारतीय संस्कृति का ब्रह्मचारी शुरू

के पच्चीस साल में अपने-आपको दुनिया के लिए तैयार कर लेता है। उसका शारीरिक, मानसिक और आत्मिक विकास हो जाता है। उसमें प्रेम, सत्य और अहिंसा की जोत जग जाती है। वह प्राणिमात्र के साथ अपने-जैसा व्यवहार करता है। दूसरे का दर्द वही पहचान सकता है, जो अपने ही दुःख में नहीं डूबा है। संस्कृति का सार यही है कि मनुष्य अपने-आप में भूलें नहीं। जिस समाज के मनुष्य ऐसी संस्कृति में पलते हैं, वही सच्चे मनुष्य हैं। उन्हीं का समाज सच्चा मनुष्य-समाज है।

यहां यह भी याद रखना चाहिए कि जहां पच्चीस बरस की उम्र तक लड़के पढ़ते थे, वहां लड़कियों की शिक्षा के लिए भी गुरुकुल होते थे। लड़के-लड़कियों दोनों को पढ़ने-लिखने के बराबर हक थे। लड़कियां भी गुरुकुलों में अपने शरीर, मन और आत्मा का विकास करती थीं।

इस तरह लड़के-लड़कियां पढ़ाई पूरी करने के बाद गृहस्थाश्रम में दाखिल होते थे। उनके विवाह होते थे। हमारी भारतीय संस्कृति में गृहस्थ-जीवन को सबसे बड़ा माना गया है। इस आश्रम में रहते हुए आदमी को दुनिया का सही-सही अनुभव हो जाता

है। इस आश्रम की दुनिया में पति है, पत्नी है, संतान है, बेटे-बेटियां हैं, नातेदार हैं, पड़ोसी हैं, समाज है, गांव है, देश है---इन सबके साथ उसे मेल साधना होता है। गृहस्थ के सरदार पति को सबके साथ मेल करना पड़ता है। यहां वह सहयोग का पाठ पढ़ता है।

गृहस्थ में सहयोग, सेवा, परोपकार यानी दूसरों के भले में ही अपनी भलाई देखना; समाज, गांव और देश के हित के काम करना; समाज की भलाई के लिए बनाये नियमों---कानूनों को मानना। आदि-आदि बातों को सीखता है। इस आश्रम में वह अपने वासना-विकारों को शांत करता है। वह क्रोध, लोभ, मोह आदि को जीतना सीखता है। घर के दुःखों को देख-देख कर उसमें क्रोध, लोभ, मोह पैदा होते हैं, लेकिन वह संयम करता है, उन्हें अपने ऊपर हावी नहीं होने देता। उसे सुख-सम्पत्ति भी मिलती है, पर उससे वह अभिमानी नहीं बनता। अहंकार से बचता है। वह फलदार डाली की तरह झुककर चलना सीखता है।

इस आश्रम में कभी तो वह देखता है कि उसकी साख पतंग की तरह आसमान में मंडराने लगती है, कभी कटे पेड़ की तरह वह धरती पर गिर पड़ता है।

यह वहां जिंदगी की ऊंच-नीच और सुख-दुःख का पाठ पढ़ता है। गृहस्थाश्रम मनुष्य को निखारता है, क्योंकि उसे इस निखरे जीवन को लेकर दुनिया में बढ़ना है।

वह अपनी औलाद के लिए कुल की रीत बनाता है। रघुकुल की रीत की आज भी हम चर्चा करते हैं। दशरथ कैकेयी को वचन देते हैं : राम को चौदह



पिता के वचनों को पूरा करने के लिए राम तुरंत घर से निकल पड़े।

बरस का वनवास, और भरत को राज। राम तुरंत पिता के वचनों को पूरा करने निकल पड़ते हैं। उनके कुल की रीत थी कि वचन पूरा किया जाय, चाहे जान भले ही चली जाय।

इस तरह गृहस्थ लोग अपनी जिम्मेदारी को पूरी करके, अपनी औलाद को शिक्षा आदि देकर, वानप्रस्थ आश्रम में जाते हैं। वानप्रस्थाश्रम के मानी हैं, घर छोड़ कर वनों में वास करना; लेकिन वनों में वास करने का यह मतलब नहीं कि दुनिया से दूर भाग जाओ। इसका मतलब यह है कि जहां गृहस्थाश्रम में एक आदमी का निजी परिवार था और उसे उसकी भलाई के लिए मेहनत करनी पड़ती थी, अब सारा संसार उसका परिवार है। शास्त्र कहते हैं, "वानप्रस्थी के लिए सारी धरती ही परिवार है।" अब तो उसे सारे परिवारों की भलाई करनी चाहिए।

जो वानप्रस्थाश्रम में दाखिल हो जाते हैं, उनके लिए सबसे बड़ा काम दूसरों की सेवा करना है।

यह मामूली बात नहीं है। समाज और देश की सेवा करना और बदले में कोई आशा न करना, यह तो भारत की ही संस्कृति में है। वानप्रस्थी के लिए सारा समाज, सारा देश उसका घर बन जाता है। वह एक की नहीं, सबकी सेवा का व्रत लेता है। सारी दुनिया उसकी होती है और सारी दुनिया का वह होता है।

इस आश्रम में वह परोपकार के कामों के साथ-

साथ तप करता है। अपने शरीर को तपाता है। सुख-दुःख, रोग-शोक उसे डिगा नहीं सकते। वह तप करते हुए संन्यास में प्रवेश करता है। इस आश्रम में दाखिल होकर मनुष्य के लिए न तो एक समाज रहता है, न एक देश। वह दुनिया भर के आदमियों को एक-सी निगाह से देखता है। उसकी दृष्टि परमात्मा की रची हुई सारी दुनिया पर होती है। धर्म, जाति के बन्धनों से वह दूर हो जाता है।

अपने तपे हुए जीवन से वह दुनिया भर के इंसानों को सीधी राह दिखाता है, परमात्मा की भक्ति का पाठ पढ़ाता है। यह था चारों आश्रमों का उद्देश्य, जिसे हम स्वयं भी भूल-सा गये हैं।

: ६ :

वर्णाश्रम या काम-काज का बंटवारा

आज जब वर्णाश्रम की बात करते हैं तो लोग फौरन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चार वर्णों की सोच लेते हैं। लेकिन सच बात यह है कि अलग-अलग काम करनेवालों के ये अलग-अलग नाम हैं। भारत की संस्कृति जब हमें मेल-जोल से रहना सिखाती है और ऐसे समाज की रचना का काम सौंपती है, जिसमें

सब लोग एक-दूसरे से सहयोग करें, अपना-अपना काम पूरा करें तो फिर हिस्सा बांटने के लिए कामों की बांट करना जरूरी होगा। कोई खेती करेगा, कोई व्यापार करेगा, कोई खेती और व्यापार के सामान बनायगा, कोई कपड़ा तैयार करेगा, कोई जूता बनायगा, कोई सफाई करेगा, कोई पढ़ने-लिखने का काम करेगा, कोई किताबें लिखेगा——इस तरह अपनी-अपनी पसंद और योग्यता के अनुसार सब अपना-अपना भाग पूरा करेंगे। तभी समाज का काम चलेगा। अब आप इन अलग-अलग काम करनेवालों या अपना-अपना भाग पूरा करनेवालों को कुछ भी नाम दे दीजिए। यही है भारत की संस्कृति में वर्णाश्रम का मतलब। हमारी संस्कृति आदमी-आदमी में फरक नहीं करती। कामों से छोटा-बड़ा, ऊंचा-नीचा कोई नहीं। समाज में सब आदमी एक जैसे हैं। केवल कामों का बंटवारा है।

न तो सब लोग एक काम कर सकते हैं और न सब सारे काम कर सकते हैं। आदमी-आदमी की अकल, स्वभाव, ताकत अलग-अलग होती है। इसलिए सब लोगों के काम भी अलग-अलग होंगे। अलग-अलग कामों के वर्ण यानी रंग अलग-अलग हैं। रंग

के माने काला, पीला, नीला नहीं। रंग के माने हैं तरीका, ढंग। इसलिए भारत की संस्कृति ने समाज को चलाने के लिए वर्ण बना दिये।

आज भी हमें ऐसे ही वर्णों की जरूरत है। आज हमें समाज के सब कामों के लिए आला दर्जे के काम करनेवालों की जरूरत है। भारतीय संस्कृति कहती है कि इन सब काम करनेवालों में आपस में सहयोग होना चाहिए। सहयोग से देश और समाज का विकास होगा। आदमी की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्ति बढ़ेगी।

: ७ :

परिवार और समाज

एक पुरुष, एक स्त्री और दोनों की औलाद से मिलकर एक परिवार बनता है। कई-कई परिवारों के मेल को समाज कहते हैं। परिवार में जो पुरुष है, वह पिता है। स्त्री माता है। औलाद उनके बेटे-बेटियाँ हैं। पिता इस परिवार का मुखिया होता है। वह सबसे बड़ा माना जाता है, लेकिन माता की जगह तो उससे भी बड़ी है। इसलिए हमारे शास्त्रों में कहा गया है, "जहां नारियों की पूजा होती है, उस घर में देवताओं

का वास होता है।" माता ही सबको जन्म देती है। इसलिए माता का दर्जा बहुत ऊंचा है।

इस परिवार को चलाने के लिए भारतीय संस्कृति ने गृहस्थों के लिए तीन ऋण नियत किये हैं। ये तीन ऋण या कर्ज हैं: पितृ-ऋण या पिता का कर्ज, ऋषि-ऋण या गुरुओं का कर्ज और देव-ऋण यानी परमात्मा का कर्ज।

पिता का कर्ज हर-एक को चुकाना पड़ता है। जो आज बेटे हैं, वे बाद में पिता बनते हैं। उनको भी अपने पिता के समान अपनी औलाद की सेवा, शिक्षा, सेहत का प्रबंध करना पड़ता है। उसे लायक बनाना होता है।

इसी तरह ऋषि-ऋण और देव-ऋण हैं, जिन्हें समाज और मनुष्य-मात्र की सेवा करके चुकाया जाता है।

इन ऋणों के अलावा हमारी संस्कृति ने हर परिवार के लिए हर रोज करनेवाली बातें नियत कीं। इन्हें यज्ञ कहते हैं--ये पांच हैं--ब्रह्म-यज्ञ, पितृ-यज्ञ, देव-यज्ञ, भूत-यज्ञ, और नृ-यज्ञ।

ब्रह्म-यज्ञ--ज्ञान हासिल करने के लिए पढ़ना। धार्मिक पुस्तकों और ज्ञान की दूसरी किताबों को पढ़ना,

जिससे हर आदमी देश और समाज की भलाई करने की प्रेरणा पावे।

पितृ-यज्ञ--देखा जाता है कि आजकल बड़े-बूढ़ों के साथ युवकों के विचारों का मेल नहीं खाता। इस-लिए कलह और झगड़े रहते हैं। लेकिन जिस परिवार में बड़े-बूढ़ों के विचारों का मनन किया जाता है, उनके विचारों का आदर होता है, उनकी सब तरह से सेवा की जाती है, यानी पितृ-यज्ञ होता है, वहां कलह नहीं होती। माता-पिता का मान करना, बूढ़े होने पर उनकी सब जरूरतों को पूरा करना ही पितृ-यज्ञ है।

देव-यज्ञ--हम, आप सब इस दुनिया में रहते हैं। हमें इस दुनिया की हवा को भी साफ रखना है। हर रोज आग जलाकर होम करना, सुगंधि फैलाना हमारा काम है। हमारे पुराने लोगों ने इसीलिए घर-घर में होम करने का आदेश दिया। होम करते समय हम परमात्मा से प्रार्थना करते हैं, "सब सुखी हों, सबकी सेहत अच्छी हो, सबका कल्याण हो, किसी को भी कभी कोई दुःख न हो।" इतनी ऊंचे दर्जे की प्रार्थना तो भारतीय संस्कृति ही सिखाती है।

भूत-यज्ञ--इस कर्म का मतलब यह है कि जहां आप अपने परिवार की भूख-प्यास की चिंता करते हैं,

वहां उन दूसरों की भूख-प्यास की चिंता भी करें, जो अपाहिज हैं, जो लाचार हैं, जो भूखे हैं, जो रोगी हैं और जिन्हें खाने-पीने के लिए दूसरों का आसरा ताकना पड़ता है। भारतीय संस्कृति कहती है कि उनकी भूख मिटाना आपका कर्तव्य है। ऐसा करके आप किसी पर अहसान नहीं करते, अपना कर्तव्य पूरा करते हैं।

इतना ही नहीं, इससे भी बढ़कर यह कि पशु-पक्षियों तक को भी हर रोज अपने भोजन का भाग









१. अध्ययन। ३. यज्ञ।
२. परिवार में। ४. सेवा।

दें। लेकिन बचा-खुचा या सड़ा-गला नहीं, बल्कि जिन-जिनको आप दें, अपने खाने से पहले दें।

नृ-यज्ञ या अतिथि-यज्ञ——मेहमान का आदर-मान करना बहुत बड़ा काम कहा गया है। मेहमान आवे तो बढ़कर उसकी अगवानी करो। भोजन आदि खिला-पिला कर उसे खुश करो। मेहमान बिन बुलाये आता है, अचानक आता है, उसमें छल-कपट नहीं होता, ऐसे आये पुरुष की सुख-सुविधा का ध्यान रखना कितना भला काम है !

इन मोटी-मोटी बातों को हर रोज करते रहने से परिवार में सुख और शांति का वास होता है। सारे परिवार इसी ढंग से रहें तो ऐसे परिवारों का समाज भी सुखी होगा। हमारी भारतीय संस्कृति आदमी को ऐसे तरीके से रहना-सहना सिखाती है कि उसे कोई परेशानी न हो। आज जो परेशानियां बढ़ रही हैं, उसका कारण यह है कि हम अपनी संस्कृति पर नहीं चलते, हम आज की तड़क-भड़क के पीछे भाग रहे हैं।

'सादा जीवन और ऊंचे विचार' की बात हम भूल गए हैं। इस बात को गांधीजी ने अपने जीवन से पूरा कर दिखाया। सादगी के साथ रहकर उन्होंने

सारी उम्र बिता दी। उनके विचारों, उनकी बातों को सुनने के लिए सारी दुनिया के लोग उनकी ओर ताका करते थे। आज भी दुनिया उनकी बताई राह पर चलने की कोशिश कर रही है। गांधीजी भारतीय संस्कृति के सच्चे पुजारी थे। वह उसके पुजारी ही नहीं थे, बल्कि उन्होंने उस संस्कृति को अपने जीवन में ढाल कर भी दिखा दिया।

: ८ :

आंखें खोलकर चलो

भारतीय संस्कृति की मोटी-मोटी बातें बता दी गई हैं, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि हमारी संस्कृति लकीर की फकीर है। इसमें समय-समय पर अदल-बदल भी होती रही है और होती रहेगी। हमारे वेद, शास्त्र मनुष्यों को उपदेश देते हैं, उनको राह दिखाते हैं; लेकिन साथ ही कहते हैं, "मनुष्यो, आंखें खोलकर चलो। जो बात अकल से परे हो, उसे समझो-बूझो, तब उसपर अमल करो। बिना सोचे-समझे कुछ नहीं करो।"

हमारे वेद-शास्त्र क्या हैं? हमसे पहले लोगों के ज्ञान या अनुभव की बातें हैं। जैसे-जैसे मनुष्य का

विकास होता है, तैसे-तैसे अनुभव और ज्ञान का भी होता है। इसलिए वेद-शास्त्रों में कही बातों का भी विकास होता है। इसीसे हमने कहा कि हमारी संस्कृति लकीर का फकीर नहीं बनाती। वह तो विकास चाहती है। उसका मतलब मनुष्य का सब तरह से विकास करना है और सही मानो में आदमी को आदमी बनाना है।

जिन साधु-संतों ने भारतीय संस्कृति और हमारे वेद-शास्त्रों के ज्ञान को समझ लिया था, उन्होंने हर आदमी को उपदेश दिया :

प्यारे मन की गठरी खोल,
उसमें लाल भरे अनमोल।

मतलब यह कि अपने-आपको पहचानो। अपनी बुराई को पहले देखो। उसे ठीक करो।

आज की तड़क-भड़क को देखकर हम चकरा जाते हैं। अच्छा-बुरा समझ में नहीं आता। बाहरी बनाव-ठनाव के भीतर सब बुराइयां छिपा ली जाती हैं। जो इस बाहरी बनाव में लगा है, अपने को छिपाता है, वह भला कैसे अपने को पहचान सकता है। जो बाहरी बनाव नहीं करते, अपने दोषों को देखते हैं, उन्हें दूर

करने की कोशिश करते हैं, वे अपने साथ-साथ दुनिया का भी भला करते हैं।

ज्ञानी पुरुष इस बारे में अक्सर यह मिसाल दिया करते हैं :

एक साधु थे। वह हर रोज झोला लटकाकर बाजार में निकलते थे। झोले का एक भाग सामने, दूसरा पीठ पर लटका रहता था। रात होती तो सामने का झोला भारी हो जाता। वह अपनी जगह लौट जाते।

एक बार एक आदमी ने कहा, "महाराज, आपका पीठ वाला झोला सदा खाली रहता है। ऐसा क्यों ?"

साधु ने जवाब दिया, "भाई, मैं तो दिन भर अपनी बुराइयां जमा करता हूं। उनको अपने सामने की झोली में संजो लेता हूं। अपनी जगह लौटकर उनको तरतीब से ठीक करने की कोशिश करता हूं। पीठ का झोला इसीलिए खाली रह जाता है कि मैं दूसरों की बुराइयां जमा नहीं करता।"

मतलब यह है कि हमारे वेद-शास्त्र और साधु-महात्मा हमें सिखाते हैं कि अपने को पहचानो। अपने को पहचाननेवाला स्वार्थ नहीं, परमार्थ में मन लगाता है। दूसरों के भले में अपना भला समझना ही सच्चा ज्ञान है। दूसरों का भला चाहनेवाला प्रेम का

पुतला बन जाता है। इसीलिए कहते हैं : प्रेम भगवान हैं और भगवान ही प्रेम है।

वास्तव में प्रेम करनेवाला ही सही मानों में सुधरा हुआ इंसान होता है। सबको समान समझना, सबके सुख-दुःख को अपने सुख-दुःख जैसा समझना, यही संस्कृति है, यही मनुष्य का विकास है। भारतीय संस्कृति सबको यही सिखाती है।

'मंडल' द्वारा प्रकाशित प्राप्य साहित्य

गांधीजी लिखित

प्रार्थना प्रवचन (भाग १)	३)
,, ,, (भाग २)	२॥)
गीता-माता	४)
पंद्रह अगस्त के बाद	१॥), २)
धर्मनीति	१॥), २)
द० अफ्रीका का सत्याग्रह	३॥)
मेरे समकालीन	५)
आत्मकथा	२॥), ४)
आत्म-संयम	३)
गीता-बोध	॥)
ग्राम-सेवा	।=)
मंगल-प्रभात	।=)
सर्वोदय	।=)
नीति-धर्म	।=)
आश्रमवासियों से	।=)
हमारी मांग	१)
सत्यवीर की कथा	।)
संक्षिप्त आत्मकथा	१॥)
हिंद-स्वराज्य	॥।)
अनीति की राह पर	१)
बापू की सीख	॥)
गांधी-शिक्षा (तीनभाग)	१=)
आज का विचार (दो भाग)	॥।)
ब्रह्मचर्य (दो भाग)	१॥।)
गांधीजी ने कहा था ५ भाग	१।)

विनोबाजी की लिखी

विनोबा-विचार : २ भाग	३)
गीता-प्रवचन	१॥)
शान्ति-यात्रा	१॥)
जीवन और शिक्षण	२)
स्थितप्रज्ञ-दर्शन	१)
ईशावास्यवृत्ति	॥।)
ईशावास्योपनिषद्	=)
उपनिषदों का अध्ययन	१)
सर्वोदय-विचार	१=)
स्वराज्य-शास्त्र	॥।)
भू-दान-यज्ञ	।)
गांधीजी को श्रद्धांजलि	।=)
राजघाट की संनिधि में	॥=)
विचार-पोथी	१)
सर्वोदय का घोषणा पत्र	।)
जमाने की मांग	=)

नेहरूजी की लिखी

मेरी कहानी	८)
हिन्दुस्तान की समस्याएं	२॥)
लड़खड़ाती दुनिया	२)
राष्ट्रपिता	२)
राजनीति से दूर	२)
हमारी समस्याएं (२ भाग)	१)
हिन्दुस्तान की कहानी सं०	५)

अन्य लेखकों की

आत्मकथा (राजेन्द्रबाबू)	८)
गांधीजी की देन ,,	१॥)
गांधी-मार्ग ,,	=)
महाभारत-कथा (राजाजी)	५)
कुब्जा सुन्दरी ,,	२)
शिशु-पालन ,,	॥)
मैं भूल नहीं सकता	२॥)
कारावास-कहानी (सु.नै.)	१०)
गांधी की कहानी (लु.फि.)	४)
भारत-विभाजन की कहानी	४)
गांधी श्रद्धांजलि ग्रंथ	३)
इंग्लैंड में गांधीजी	२)
बा, बापू और भाई	॥)
गांधी-विचार-दोहन	१॥)
अहिंसा की शक्ति (ग्रेग)	१॥)
सत्याग्रह-मीमांसा	३॥)
बुद्धवाणी (वियोगी हरि)	१)
सन्त सुधासार (,,)	११)

संतवाण	
प्रार्थना ,,	
अयोध्याकाण्ड ,, ,,	१)
ागवत-धर्म (हृ. उ.)	६॥)
ार्थी जमनालालजी ,,	६॥)
स्वतन्त्रता की ओर ,,	४)
बापू के आश्रम में ,,	१)
मानवताके झरने (माव.)	१॥)
बापू (घ. बिड़ला)	२)
रूप और स्वरूप ,,	॥=)
डायरी के पन्ने ,,	१)
ध्रुवोपाख्यान ,,	।)
स्त्री और पुरुष (टाल्स्टाय)	१)
मेरी मुक्ति की कहानी ,,	१॥)
प्रेम में भगवान ,,	२)
जीवन-साधना ,,	१।)
कलवार की करतूत ,,	।)
हमारे जमाने की गुलामी,,	।॥)
बुराई कैसे मिटे ? ,,	१)
बालकों का विवेक ,,	।॥)
हम करें क्या ? ,,	३॥)
धर्म और सदाचार ,,	१।)
अंधेरे में उजाला ,,	१॥)
कल्पवृक्ष (वा० अग्रवाल)	२)
हिमालय की गोद में	२)
साहित्य और जीवन	२)
कब्ज (म० प्र० पोद्दार)	१)
राजनीति प्रवेशिका	१)
जीवन-संदेश (ख.जिब्रान)	१।)
अशोक के फूल	३)
लोकमान्य तिलक	२॥)
हमारा कानून	५)
क्रांति की भावना	२॥)
तुकारामगाथा-सार	१॥)
कित्तूर की रानी	२)
जीवन-प्रभात	५)

सप्तदशा	२)
रीढ़ की हड्डी	१॥)
अमिट रेखायें	३)
एक आदर्श महिला	१)
राष्ट्रीय गीत	।)
तामिल-वेद (तिरुकुरल)	१॥)
आत्म-रहस्य	३)
थेरी-गाथाएं	१॥)
बुद्ध और बौद्ध साधक	१॥)
जातक-कथा (आनंद कौ.)	२॥)
हमारे गांव की कहानी	१॥)
अन्नों की खेती	२)
दलहन की खेती	१)
साग-भाजी की खेती	३)
पशुओं का इलाज (प.प्र.)	॥)
रामतीर्थ-संदेश (३भाग)	१=)
रोटी का सवाल (क्रोपा०)	३)
नवयुवकों से दो बातें,,	।=)
पुरुषार्थ (डा.भगवान्दास)	६)
काश्मीर पर हमला	२)
शिष्टाचार	॥)
भारतीय संस्कृति	३॥)
आधुनिक भारत	५)
फलों की खेती	२॥)
मैं तन्दुरुस्त हूं या बीमार	।॥)
नवजागरण का इतिहास	३)
गांधीजी की छत्र छाया में	२॥)
भागवत-कथा	३॥)
जय अमरनाथ	१॥)
प्रगति के पथ पर ६ पुस्तकें	१॥)
संस्कृत-साहित्य-सौरभ (२८ पुस्तकें) प्रति पुस्तक	।=)
समाज-विकास-माला (५८ पुस्तकें) प्रति पुस्तक	।=)

समाज-विकास-माला की पुस्तकें

१. बद्रीनाथ
२. जंगल की सैर
३. भीष्म पितामह
४. शिवि और दधीचि
५. विनोबा और भूदान
६. कबीर के बोल
७. गांधीजी का विद्यार्थी-जीवन
८. गंगाजी
९. गौतम बुद्ध
१०. गांव सुखी, हम सुखी
११. निषाद और शबरी
१२. कितनी जमीन ?
१३. ऐसे थे सरदार
१४. चैतन्य महाप्रभु
१५. कहावतों की कहानियां
१६. सरल व्यायाम
१७. द्वारका
१८. बापू की बातें
१९. बाहुबली और नेमिनाथ
२०. तन्दुरुस्ती हजार नियामत
२१. बीमारी कैसे दूर करें ?
२२. माटी की मूरत जागी
२३. गिरिधर की कुंडलियां
२४. रहीम के दोहे
२५. गीता-प्रवेशिका
२६. तुलसी-मानस-मोती
२७. दादू की वाणी
२८. नजीर की नज्में
२९. संत तुकाराम
३०. हजरत उमर
३१. बाजीप्रभु देशपाण्डे
३२. तिरुवल्लुवर
३३. कस्तूरबा गांधी
३४. शहद की खेती
३५. कावेरी
३६. तीर्थराज प्रयाग
३७. तेल की कहानी
३८. हम सुखी कैसे रहें ?
३९. गो-सेवा क्यों ?
४०. कैलास-मानसरोवर
४१. अच्छा किया या बुरा ?
४२. नरसी महेता
४३. पंढरपुर
४४. ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती
४५. संत ज्ञानेश्वर
४६. धरती की कहानी
४७. राजा भोज
४८. ईश्वर का मंदिर
४९. गांधीजी का संसार-प्रवेश
५०. ये थे नेताजी
५१. रामेश्वरम्
५२. कब्रों का विलाप
५३. रामकृष्ण परमहंस
५४. समर्थ रामदास
५५. मीरा के पद
५६. मिलजुल कर काम करो
५७. काला पानी
५८. पावभर आटा

मूल्य प्रत्येक का छः आना



३८

छः आना